जिस में ३६३ ऐसी मतों का वर्णन है, यह दर्शन वह है जो इतिहास के नक्शे से मिट चुके हैं। भारतीय इतिहास में यह ग्रंथ महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस ग्रंथ का अनुवाद करने का हम दोनों को सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस शास्त्र के अनुवाद से पहले हमें विभिन्न दर्शनों के अध्ययन का अवसर मिला। इस ग्रंथ के शुरू में विस्तृत भूमिका महत्वपूर्ण है। इस सूत्र के दो स्कंध हैं प्रथम स्कंध में १० अध्ययन हैं। द्वितीय स्कंध में ७ अध्ययन हैं।

प्रथम श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन का नाम समय है। इस में समय परसमय का वर्णन है। वध, हिंसा और वैर का कारण परिग्रह है। पर वादीयों के तीन सौ मतों की मानयता का वर्णन है।

द्वितीय अध्ययन वैतालिय में समिति, कषाय विजय, परिषहविजय का उपदेश भगवान महावीर ने अपने श्रमणों को सुन्दर ढंग से दिया है।

तृतीय अध्ययन का नाम उपसर्ग है। इस में श्रमण को सुख व दुख समता में रह कर संयम पर दृढ़ रहने का उपदेश है। जैसे पानी के अभाव में मछली छटपटा कर प्राण त्याग देती है इसी तरह श्रमण प्रतिकूल स्थितियों में प्राण तक त्याग दे, पर परिषह में भी व्रतों का पालन करे।

चर्तुथ अध्ययन स्त्री परिज्ञा वहुत महत्वपूर्ण है। जो ब्रह्मचारी मुनि है वह ध्यान को भूल कर भोग में उलझ जाता है। वह साधना से भ्रष्ट हो जाता है। अतः मुनि को स्त्री संसर्ग से वचना चाहिए।

पांचवा अध्ययन का नाम नरक विभिक्त है। इस मं नरक में पैदा होने वाले जीवों की वेदना का चित्र प्रस्तुत कर, मनुष्य को पाप से वचने का उपदेश दिया गया है।

छटा अध्ययन वीरथुई है। यह प्रभु महावीर की

स्तुती है। इस के रचियता आचार्य सुधर्मा स्वामी हैं। यह संसार की प्रथम स्तुती में है जो छन्द अलंकार के सभी नियमों की कसौटी पर खरी उतरती है। इस में विविध उपमाएं देकर प्रभु की स्तुती की गई है। उन के वीतरागी जीवन की झलक इस स्तुती से मिलती है।

सातवें अध्ययन का नाम कुशील है। इस में कुशील का वर्णन है। आठवें अध्ययन का नाम वीर्य है। इस में वताया गया है कि भिक्षु को असंयम का परित्याग कर संयम में पुरूषार्थ करना चाहिए।

नौंवा अध्ययन का नाम धर्म है। इस में धर्म पर सुन्दर चिंतन प्रस्तुत किया गया है। दसवें अध्ययन का नाम समाधि है। इस में भाव समाधि पर प्रकाश डाला गया है। ग्यारवें अध्ययन का नाम मार्ग है। इस में सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चरित्र व तप पर प्रकाश डाला गया है।

वारहवां अध्ययन समोसरण है। इस अध्ययन में अक्रियावादी, अज्ञानवादी विनयवादी और क्रियावादी चार समसरणों का उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख भारतीय इतिहास की निधि है। दूसरे दार्शनिकों का आचरण व व्यवहार कैसा था ? इसका सुन्दर चित्रण इस अध्ययन में मिलता है। इन मतों की मान्यताओं का वर्णन है। तेहरवां अध्ययन यथातथ्य है। इस में क्रोध और उस के दुष्परिणामों को वताकर साधु को धर्म के प्रति श्रद्धालु व माया रहित जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है।

१४वें अध्ययन ग्रंथ में वताया गया है कि साधु को वाह्य और अंतर परिग्रह से युक्त होकर संयम की उतकृष्ट साधना करनी चाहिए। पन्द्रहवें आदान या आदानीय अध्ययन में वताया गया है कि विवेक की तेजस्विता के साथ संयम साधना उत्कृष्ट होनी चाहिए। सोलहवें गाथा अध्ययन

में निर्ग्रंथ, भिक्षु, श्रमण शब्दों की व्याख्या की गई है। यह सब साधु के पर्यायवाची नाम हैं जो प्राचीन काल से जैन साधु के लिए प्रयोग होते थे।

द्वितीय श्रुत स्कंध का दूसरा नाम महानिशिथ है। इस के सात अध्ययन हैं। इन सात अध्ययनों में अधिकांश दार्शनिक विवेचन के साथ ही आचार का सुन्दर विवेचन है। इन अध्ययनों के बारे में आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने जैन आचार के पृष्ठ ३६६ में बताया है :-

बिना प्रयोजन के मनोरंजन हेतु की जाने वाली हिंसा अनर्थ दण्ड है। श्रमणों को संयम पूर्वक आहार ग्रहण करना चाहिए। जो साधक षट् काय के जीवों के वध का परित्याग नहीं करता, उनके साधु मित्रवत् व्यवहार नहीं करता, उसकी भावना सतत्, सावद्यानुशासन की रहती है जिस से निरंतर वह श्रमण कर्मबंध करता है। अतः प्रत्याख्यान आवश्यक नहीं, अनिवार्य है। आचार का सही पालन करने के लिए व अनाचार से बचने के लिए भाषा विवेक आवश्यक है। आद्रक कुमार मुनि ने गोशालक, बौद्ध, भिक्षु वेदवादी ब्राह्मण, हस्तीतापस आदि के साथ विस्तार से चर्चा करके उन परम्पराओं के आचार का खण्डन कर सम्यक आचार का प्रतिपादन किया है। लेप गाथापति के धार्मिक जीवन के माध्यम से गृहस्थ के आचार का वर्णन हुआ है। पार्श्वपत्य पेढालपुत्र और गणधर गौतम की आपसी महाव्रत धर्म और पंच महाव्रतों की चर्चा का विश्लेषण है।

इस तरह प्रस्तुत आगम में भी अध्यात्मिक सिद्धांतों को जीवन में ढालने का और शुद्ध श्रमणाचार का पालन करने के लिए अत्याधिक बल दिया है। श्रमणों को संसारिक प्रवृतियों में भाग नहीं लेना चाहिए और न ही अपना मन प्रकट करना चाहिए, उसे मध्यस्थ भाव रखना

चाहिए।''

इस आगम के अनुवाद में बहुत कठिनाईयां आई। इस आगम के प्रथम भाग की भाषा काफी प्राचीन है। पंजावी भाषा में अनुवाद के लिए योग्य शब्दों का आभाव बहुत खटका।

सारा कार्य हम दोनों ने एक वर्ष में पूरा किया। एक वर्ष विद्वानों को दिखाने व विमर्श में लग गया। फिर हमारी प्रेरिका साध्वी श्री स्वर्णकांता जी महाराज का आशीवाद व प्रेरणा से यह आगम प्रैस में गया। इस आगम के अनुवाद में विद्वानों का हमें उतना सहयोग नहीं मिला जितना श्री उतराध्ययन सूत्र के संदंभ में मिला था। फिर भी प्रभु महावीर का आशीवाद हमारे साथ था। इसी का सुफल था कि यह अनुवाद कठिन होते हुए भी हमें सुगम लगा। इस तरह इस आगम का पंजावी अनुवाद व्याख्या सहित तैयार हो गया।

एक वर्ष इस अनुवादक के प्रकाशन में लग गया। पंजाव में आतंकवाद का समय था। कुछ श्री आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस में ज्यादा होने के कारण कुछ भाग इस आगम को हमें वाहर से छपवाना पडा। मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने सारे प्रूफ पढे। जिल्द की व्यवस्था हुई। कुछ भाग ज्ञानी प्रिंटिंग प्रैस ज्ञानी की थी। वह पंजावी भाषा में कुशल था। हमारा कार्य इस प्रैस से जल्द पूरा हो गया। उसका कारण यह था कि उस प्रैस में सारा कार्य पंजावी में होता था। प्रैस घर में थी। इस के विपरीत श्री आत्म जैन प्रिंटिंग प्रैस में हिन्दी मं काम की अंवार लगी हुई थी। पर प्रैस के मैनेजर श्री राजकुमार शर्मा का सहयोग भी महत्वपूर्ण रहा।

इस आगम के लिए दो शव्द फ्रांस की जैन विदूषी डा० नलिनी वलवीर ने लिखे। इस ग्रंथ का विमोचन

इंटरनैशनल जैन कांग्रेस के अवसर पर दिल्ली के विज्ञान भवन में हुआ। इसका विमोचन स्वयं आचार्य श्री सुशील कुमार जी महाराज ने किया। आप ने स्वयं इस शास्त्र की प्रस्तावना लिखी।

गच्छाचार प्रकीर्णक - ४

इस छोटे से ग्रंथ में आचार्यों ने श्रमण के लिए गच्छ में रहना अनिवार्य बताया है। गच्छ में रह कर भी साधक अपनी साधन निर्देष रूप से पूरी कर सकता है। इस में शिष्य को गलती हो जाने पर प्रायश्चित लेने के लिए गुरू के समक्ष प्रायश्चित करने का विधान है। अगर किसी कारण गुरू जिन मार्ग से विपरीत चले तो तो उसे शुद्ध मार्ग पर चलाना शिष्य का कर्तव्य है। अगर शिष्य ऐसा नहीं करता तो वह गुरू का शत्रु माना गया है। प्राकीर्ण में आचार्य को संघ का पिता माना गया है। वह स्वयं साध्वाचार का पालन करता है। संघ के हर साधु से आचार्य इस का पालन करवाता है। अगर वह ऐसा नहीं करता तो ऐसा आचार्य मोक्ष मार्ग का अधिकारी नहीं। धर्म संघ का शत्रु माना गया है। सारणा, वारणा, प्रेरणा करने वाला गच्छ होता है। इस में रह कर प्रत्येक साधु अपने पापों का प्रायश्चित द्वारा नष्ट करता है। जिसे आचार्य प्रदान करता है। इस प्रकार साधक में नए दोष पैदा नहीं होते। जिस गच्छ में गीतार्थ मुनियों की संख्या ज्यादा हो उसे सुगच्छ कहा है।

इस ग्रंथ में श्रमण के अतिरिक्त श्रमणीयों की मर्यादा का भी कथन है। आचार्य ने श्रमणीयों को कहा है जिस गच्छ में स्थविरा महासाध्वी के पश्चात युवा साध्वी शयन करती है वह सुगच्छ है। ऐसा गच्छ ज्ञान दर्शन चारित्र का आधारभूत श्रेष्ट गच्छ है। श्रमण श्रमणीयों को परस्पर

संबंध नहीं बनाना चाहिए। ऐसा रिश्ता आग के करीब घी का रिश्ता है। इस लिए श्रमण को बाल, वृद्ध, नातिन और भगिनि के शरीर का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। साध्वीयों को गृहस्थों के कार्यों में किसी प्रकार का संबंध नहीं रखना ही सुगच्छ का लक्षण है। इस सूत्र में गच्छ की परिभाषा गच्छ में रहने वाले साधू व साध्वीयों के कर्तव्य का स्पष्ट वर्णन है। साध्वीयों के बारे में इस शास्त्र में विशेष मनोविज्ञान चेतावनी दी गई है।

यह ग्रंथ प्रकिर्णक कहलाता है इस का विमोचन १० नवंबर को हुआ था। यह हमारी अर्ध वार्षिक पत्रिका पुरुषोत्तम प्रज्ञा के अंक का भाग था। यह पत्रिका का संपादन प्रकाशन मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन करते हैं। यह पत्रिका मेरे नाम को समर्पित उनकी गुरू भक्ति का प्रतीक है। उन्होंने इस प्रकिर्णक का अनुवाद करने की मेरे को प्रेरणा ही नहीं दी, बल्कि इस अनुवाद को हर प्रकार से सहयोग दे कर प्रकाशित किया। इस ग्रंथ को पढ़ने के पश्चात् हमें पुरातन जैन गच्छ परम्परा और उस के अनुशाषण का पता चलता है।

वीरथुई - ५

वीरथुई कोई स्वतंत्र रचना नहीं। यह तो प्रभु महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मा द्वारा की गई गुण पूरक स्तुती है। जिसे श्री सूत्रकृतांग सूत्र में स्थान दिया गया है। जैन समाज ही नहीं, समग्र कव्य जगत में यह प्राचीनतम् काव्य है। गणधर सुधर्मा के शिष्य आर्य जम्बु स्वामी ने पूछा "प्रभु ! आप ने तो श्रमण भगवान महावीर को बहुत करीब से देखा है, सुना है, ऐसे श्रमण भगवान महावीर कैसे थे ? उनका गुण ज्ञान कैसा था ? कृपया मुझे बताएं।

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य सुधर्मा ने अपने

शिष्य आर्य जम्बू के सामने ऐसा चित्र खींचा है जैसा उसी प्रकार का उन्होंने प्रभु महावीर का स्वरूप देखा था। सुना। वैसा सुधर्मा स्वामी ने स्तुती के रूप में अपने शिष्य आर्य जम्बू स्वामी को कह डाला।

"जैसे दानों में श्रेष्ठ अभयदान है, सत्यों में वही सत्य है जो किसी जीव की हानि का कारण न बने। तपों में उत्तम ब्रह्मचर्य तप है। लोक में उत्तम श्रमण ज्ञातापूत्र है।"

इस प्रकार के यह श्लोक बंध यह स्तुति प्रभु महावीर के प्रति श्रद्धा व आस्था का प्रतीक है। एक शिष्य अपने गुरू के प्रति क्या सोचता है ? इस का मनोविज्ञानिक व श्रद्धापूर्ण वर्णन इस स्तुती के हर शब्द में झलकता है।

इस वीरथुई पर अनेकों देशो-विदेशों के विद्वानों ने कार्य किया है। इस में जर्मन निवासी श्रीमती मेटे का नाम प्रसिद्ध है। उनका प्रवचन पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला के प्रांगन में हमें सुनने का अवसर मिला। हमें भी इस बात की प्रेरणा मिली। हमने इस स्तुती का पंजाबी अनुवाद प्रकाशित किया। इस पुस्तक का अनुवाद का विमोचन आचार्य आत्मा राम भाषण माला के अवसर पर पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला में हुआ था।

नवकार मंत्र व्याख्या - ६

जैन धर्म का मूल मंत्र नवकार है। यह मंत्र सब मंत्रों में श्रेष्ट है। चौदह पुर्वो व समस्त आगमों का सार यह मंत्र त्रिलोक पूज्य है। इस मंत्र के ५ पदों में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व संसार में भ्रमण करने वाले सब साधुओं को नमस्कार किया गया है। यह मंत्र प्राचीन है यह सब जैन सम्प्रदायों में मान्य है। जैन संस्कृति, दर्शन व धर्म का आधार है। सभी मंत्र, तंत्र व यंत्र इस नवकार मंत्र से निकले हैं। हमने इस पुस्तका में अरिहंत सिद्धों भगवान के

स्वरूप का कथन किया है। आचार्य, उपाध्याय व साधु के गुणों का वर्णन भी किया। इस मंत्र की प्राचीनता का प्रमाण कलिंग के राजा खारवेल द्वारा लिखित शिलालेख से प्राप्त होती है। जो दूसरी ई० पू० सदी का है। उस का मंगलाचरण इस के प्रथम दो पदों से किया गया है। प्राचीन भगवती सूत्र में इस मंत्र को मंगलाचरण के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। पांच पद ही सारे जैन साहित्य के विस्तार का आधार है। इस मंत्र के अराधना व ध्यान से अनेक जीव मुक्ति रहे हैं भविष्य में जाएंगे। इस पुस्तक का विमोचन ३१ मार्च १९७२ को हुआ था।

समाधि मरण प्रार्किणक – ६

जैन धर्म में समाधि मरण का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। समाधि मरण को आम भाषा में संथारा कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। १. सागार २. आगार चारों अहार के त्याग संपूर्ण संथारा है। संथारा आत्म हत्या नहीं। आत्मा हत्या के पीछे सांसारिक इच्छाओं की आपूर्ति ना होना मुख्य कारण है। संथारा स्वेच्छा से बहादुरी पूर्वक उस समय स्वीकार किया जाता है जब शरीर धर्म साधना में सहायता करनी बंद कर दे। शरीर को सुख पूर्वक धर्म में लगाना ही समाधिमरण है।

प्रस्तुत प्रकीर्णक की १२ गाथाओं में इस विषय का महत्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ काफी प्राचीन है। इसका वर्णन नंदी सूत्र में उपलब्ध नहीं होता है। प्रकिर्णक ग्रंथ उत्कालिक में आते आचार्य श्री जिनचन्द्र सूरी ने अपने विधि भाग "प्रपा" में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस ग्रथ के शुरू में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव व अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर को वन्दन किया गया है।

समाधि मरण के बारे में श्लोकों में कहा गया है :

"यह अराधना समाधि मरणा संयमी लोगों के जीवन का मनोरथ होता है। जीवन अंतिम भाग में इसे स्वीकार करके, निश्चय ही संयमी पुरूषों में विजय ध्वज फहराते हैं।"

फिर कहा गया है :

"जैसे तीर्थंकरों ने ध्यानों में उत्तम शुकल ध्यान कहा है। ज्ञानों में उत्तम केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) है। इसी प्रकार मनुष्यों में श्रेष्ट परिनिर्वाण को श्रेष्ठ वताया गया है।"

समाधि मरण में श्रेष्टता को आगे वढ़ाते कहा गया है :

"जैसे मणियों में श्रेष्ठ वैडुरिया मणी है। सुगन्धियों में गो शीर्ष पर चन्दन श्रेष्ट है। रत्नों में श्रेष्ट रत्न श्रृंगार है। इस प्रकार संयमी पुरूषों के लिए उदास समाधि मरण मोक्ष है।"

"समाधि मरण से आत्मा परमात्मा वन जाती है। देव लोक या मनुष्य गति को प्राप्त करती है।"

महत्व के वाद संथारे की तैयारी का वर्णन किया गया है। जो हर श्रावक या मुनि के लिए जानने योग्य है। यह ग्रंथ वहुत महत्वपूर्ण सूचनाएं संथारे के संवंध में प्रदान करता है। संथारे का फल इस प्रकार वताया गया है :

"जो समत्व, अहंकार और मोह से रहित श्रेष्ट मुनि घास फूस के संथारे को ग्रहण करके, मुक्ति का सुख अनुभव करता है ऐसा सुख चक्रवर्ती को भी प्राप्त नहीं होता।"

"हमने उस ग्रंथ का पंजावी अनुवाद किया जिसे प्रकाशित कर मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने ३१ मार्च को मुझे समर्पित किया।

अप्रकाशित प्राकृत साहित्य

हमारे द्वारा कुछ अन्य प्राकृत आगमों का पंजाबी भाषा में अनुवाद किया गया है। उनमें कुछ आगमों का अनुवाद शीघ्र प्रकाशित है। इन आगमों का संक्षिप्त परिचय हम दे रहे हैं :

दशवैकालिक सूत्र १ :

यह मूल सूत्र है। जैन श्वेताम्बर परम्परा में हर नवदीक्षित साधु साध्वी को इस का अध्ययन आवश्यक है। इस में पांच महाव्रत, पांच समिति त्रस स्थावर जीवों का वर्णन, भिक्षा के ४२ दोषों का वर्णन है। यह शास्त्र जैन धर्म में आचार शास्त्र है। शास्त्र का पहला श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिस में कहा गया है :

"धर्म श्रेष्ट मंगल है, धर्म का आधार अहिंसा, संयम व तप है। जो ऐसे धर्म की अराधना करता है उसे स्वर्ग के देवता नमस्कार करते हैं।"

'साधु गाय की भांति भिक्षा प्राप्त करें, जैसे गाय मैदान में घास खाती है पर घास को हानि नहीं करती, जैसे भ्रमरा फूलों से रस चूसता है , उसी प्रकार साधु गृहस्थों के यहां आहार करे।"

आचार की बात करते हुए कहा गया है " साधु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, महाव्रत व रात्री भोजन का त्याग करे। परिग्रह वृति पाप का कारण है। यत्ना से चलता, खाता, पीता, भिक्षु पाप कर्म का बंध नहीं करता।"

जन साधारण के लिए कहा गया है कि "क्रोध, प्रेम का नाश करता है। इस लिए क्रोध को जीतना चाहिए।"

इस शास्त्र का संकलन आचार्य शयम्भव ने पूर्व

साहित्य से किया था। उनके पुत्र मनक ने दीक्षा ग्रहण की थी। जब दीक्षा ग्रहण की तो आचार्य ने अपने ज्ञान बल से जाना कि मनक की आयु कुछ दिन शेष है। कुछ दिनों में विशाल ज्ञान पढ़ाना असंभव था। आचार्य श्री ने १४ पूर्वों से दस अध्ययनों का यह सूत्र तैयार किया। बाल मुनि अल्पायु में इस सूत्र के माध्यम से सारे साध्वाचार नियमों का पालन करने लगे। यह सूत्र इतना प्रसिद्ध हुआ कि आचार्य की इस कृति को श्री संघ ने भगवत् वाणी के रूप में मान्यता प्रदान की। इस सूत्र के विषय में यह कहा गया है "कि पंचम काल में जब सब आगम नष्ट हो जाएंगे। तब के अंत में यह ही आगम सुरक्षित रहेगा। इस आगम पर अनेकों आचार्यों ने टीका व भाष्य व टब्बा लिखे हैं। अभी यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

श्रमण सूत्र २ :

२५वीं महावीर निर्वाण शताब्दी समिति के अवसर पर प्रसिद्ध गांधीवादी सर्वोदय नेता श्री विनोबा भावे जी की प्रेरणा से चारों सम्प्रदायों ने जैन धर्म का एक सारभूत ग्रंथ तैयार किया। इस ग्रंथ में श्वेताम्बर, दिगम्बर ग्रंथों से विभिन्न विषय पर श्लोकों का संकलन कर इसे सर्वमान्य जैन ग्रंथ बना दिया। हम दोनों ने इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का पंजाबी अनुवाद किया है।

निरयावालिका आदि ५ उपांग ७ :

निरयवालिका ५ उपांग : इस उपांग ५ उपांग एक जिनमें संकलित किए गए हैं इस में प्रथम उपांग में श्रेणिक परिवार वैशाली विनाश, कोणिक जन्म, रथ मुसल संग्राम का वर्णन है। श्रेणिक पुत्रों का युद्ध में मरने, उनकी रानीयों द्वारा प्रभु महावीर के पास साध्वी जीवन स्वीकार

करने का वर्णन उपलब्ध होता है। यह अंग भारतीय इतिहास पर महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है।

द्वितीय अंग पुफीयां, तृतीय कप्पबडिया, चर्तुथ पुफचुलिका, पांचवा वणदीसा के नाम से प्रसिद्ध है। इन उपांगों में कुछ प्राचीन श्रमणों की परम्परा, भगवान नेमिनाथ व भगवान पार्श्वनाथ के समय के भिक्षुओं का वर्णन उपलब्ध होता है। इस का विस्तृत वर्णन हिन्दी निरयावलिका में किया जाऐगा।

ज्ञाताधर्म कथांग ८ :

यह ग्रंथ प्राचीन जैन कथाओं का संग्रह है। यह मूल आगमों में सूत्र कथानकों का संग्रह है। इस में कुछ प्राचीन इतिहासक कथाएं मिलती हैं। इस में द्रोपदी का प्रकरण भगवती मल्ली नाथ का इतिहासक वर्णन व भगवान महावीर की बोध कथाएं उपलब्ध होती हैं। इस ग्रंथ से हमें पता चलता है कि प्राचीन काल से भारत का व्यापार समुद्र पार देशों से होता था। जैन श्रावकों के जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्राचीन धार्मिक परम्पराओं के बारे में सम्प्रदाय का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार हम दोनों ने अर्धमागधी प्राकृत से पंजाबी भाषा में अनुवाद शुरू किया जिस के माध्यम से जैन साहित्य से लोग परिचित हुए। यह युग की मांग थी जिसे पूरा करना हर धार्मिक मनुष्य के लिए जरूरी है। हमारे अनुवाद का ढंग मिशनरी है। इसका उद्देश्य जैन धर्म का प्रचार प्रसार करना है।

स्वर्ण सुधा ९ :

यह दैनिक प्रयोग में आने वाले प्राकृत पाठों का पंजाबी लिपिआंतर है। इस में अनापूर्वी भी शामिल है।

श्रावक को रोजाना पठन योग प्राकृत पाठों का लिपितंर जैन साध्वी श्री स्वर्णकांता जी के दिशा निर्देश में तैयार किया गया है। पंजाब के गांवों में पंजाबी माध्यम होने के कारण प्रचार के कार्य में दिक्कत आ रही थी। जंगल देश के श्रावकों के कल्याणार्थ इस गुटके का प्रकाशन हुआ। यह भी प्रथम प्रयास था जो बहुत अच्छा रहा। हमारे इस प्रयास से उत्साहित अनेकों क्षेत्रो व संस्थाओं का ऐसा आयोजन हुआ।

इस प्रकार अर्धमागधी प्राकृत भाषा में जो प्रकाशित या अप्रकाशित साहित्य है हमारे द्वारा उस की सूचना दी गई है। इन अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने की योजना बन रही है। जिसे सरलात्मा गुरूणी साध्वी श्री सुधा जी महाराज पूरी करने में संलग्न हैं।

संस्कृत साहित्य :

संस्कृत भारत की ही नहीं, विश्व की प्राचीनतम् भाषाओं में मानी जाती है। इसका प्रमाण ऋृगवेद है जो संसार की प्राचीनतम् पुस्तक मानी जाती है। इस भाषा में वेदिक, बोद्ध, व जैन साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है। जैन संस्कृत साहित्य के प्राचीन विद्धानों की लम्बी परम्परा आज तक चल रही है। इन विद्धानों में आचार्य मानतुंग, आचार्य उमास्वामी, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, श्री शीलांकाचार्य, आचार्य अभयदेव सूरि, आचार्य नेमिचन्द, आचार्य जिनप्रभव सूरि, आचार्य हेम चन्द्र सूरि व आचार्य यशोविजय के नाम उल्लेखनीय हैं। जिन्होंने जैन आगमों की विभिन्न शाखाओं पर कार्य किया है। हम ने भी कुछ प्राचीन आचार्यो की कृतियों का पंजाबी अनुवाद करके, इसे प्रकाशित किया है जिन का विवरण इस प्रकार है :-

भक्तामर स्तोत्र १ :

यह रचना प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव को समर्पित है। यह इतना सुन्दर काव्य है कि संसार की भिन्न भिन्न भाषाओं में इन का अनुवाद हो चुका है। इस रचना का अपना एक इतिहास है।

"उज्जैनी नगरी के राजा भोज प्रसिद्ध वेदिक धर्म के उपासक व शिव भक्त थे। उन के दरवार में नव रत्न रहते थे जो उनकी हर जिज्ञासा का उत्तर देते थे।"

"एक दिन की वात है कि मयूर नाम के ब्राह्मण ने अपनी पुत्री की शादी वाण ब्राह्मण से कर दी। पर यह शादी के तत्काल ही झगड़ा होने लगा। वाण को उसकी पत्नी ने श्राप दिया। श्राप के कारण वह कुष्टी हो गया। वाण ने सौ श्लोकों की सूर्य स्तुती की रचना की, जिस के प्रभाव से उस का कष्ट दूर हो गया। फिर उस ने अपने हाथ पैर काट कर देवी को अर्पण कर दिए। देवी ने प्रसन्न हो कर उसे आशीवाद दिया। उस का शरीर सुन्दर व निरोग हो गया।

इन चमत्कारों के प्रभाव से वाण जैन धर्म का निन्दक हो गया। इन चमत्कारों की वात राजा भोज व आचार्य मानतुंग तक पहुंची।

एक दिन वाण ने राजा से कहा "जैन भिक्षु तो भिक्षा से शरीर यापन करने के लिए जीते हैं। इन के यहां कोई विद्या चमत्कार नहीं। यह अज्ञानी हैं। यह शैवों की तरह चमत्कार नहीं दिखा सकते ?"

"अगर इन के पास कोई चमत्कार हो, तो इन्हें दरवार में वुला कर कुछ चमत्कार दिखाने को कहा जाए"। जैन श्रावकों को कहा जाए कि वह दरवार में अपने गुरूओं

को आकर चमत्कार दिखाने को कहे'' राजा ने जैन श्रावकों को बुला कर ब्राह्मणों की बात कह डाली।

श्रावकों ने ब्राह्मण की घोषणा सुनकर कहा ''इस समय उज्जैनी नगरी में विराजित आचार्य मानतुंग चमत्कारी आचार्य हैं। आप उन्हें बुलावा भेज दीजिए, वह इस प्रश्न का समाधान अवश्य करेंगे।''

राजा भोज ने आचार्य मानतुंग को दरबार में आने का निमंत्रण दिया। आचार्य श्री अपने समय के प्रकाण्ड पंडित थे। आचार्य श्री ने दरबार में आना स्वीकार कर लिया। वह महल के दरवाजे तक पहुंचे। उनके सामने विद्वानों ने एक घी का कटोरा प्रस्तुत किया। आचार्य श्री ने एक सिलाई उस में घोंप दी। श्रावकों ने इस कटोरी का रहस्य जानना चाहा, जिस के उत्तर में आचार्य श्री ने कहा ''भव्य जनों ! घी से भरे कटोरे का अर्थ यह है कि उज्जैनी नगरी विद्वानों से ठसा-ठस भरी पड़ी है। आप के लिए यहां स्थान नहीं। मैंने सिलाई घोंप कर उन्हें बता दिया है कि जैसे भरे कटोरे में सिलाई स्थान बना लेती है, उसी तरह मैं भी आप के विद्वानों में स्थान बना सकता हूं।''

आचार्य श्री मानतुंग दरबार में पधारे। राजा भोज ने प्रश्न किया ''अगर आप में शक्ति है तो मेरे विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उन्हें हराओ।''

आचार्य श्री ने ईश्वर कर्ता के प्रश्न पर सब को हरा दिया और अपने प्रमाणों से सिद्ध कर दिया कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं, वह तो मुक्त आत्मा की अवस्था का नाम है।

फिर राजा ने कहा, ''आप अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाएं।'' आचार्य श्री ने कहा ''राजन ! आत्मा से बड़ा कोई चमत्कार नहीं। तुम्हारे विद्वान जो कार्य कर रहें हैं

वह तो इन्द्रजालियों का काम है, विद्वानों का नहीं। पर आप की इच्छा पूर्ति व जैन धर्म की प्रभावना हेतु यह कार्य मैं करूंगा। आप ऐसा कीजिए। मेरे शरीर को ४८ तालों वाली कोठड़ी में कैद कर दीजिए। मुझे ४८ हाथ कड़ीयां पहना दीजिए। फिर आप के प्रश्न का समाधान मिलेगा।"

राजा ने आचार्य श्री की परीक्षा हेतु उन्हें ४८ तालों वाली कोठड़ी में ४८ तालों वाली जंजीरों से वांध दिया। सारी उज्जैनी नगरी चमत्कार की प्रतीक्षा कर रही थी। सभी तालों के आगे सैनिक तैनात कर दिये ताकि कोई आचार्य श्री मानतुंग की सहायता न कर सके।

आचार्य श्री ने प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की स्तुती प्रारम्भ की। प्रथम श्लोक को वोलते ही प्रथम कोठड़ी का ताला व प्रथम जंजीर का एक ताला टूट गया। इस प्रकार आचार्य श्री ने भक्तों को अमर वनाने वाला स्तोत्र रच डाला। अपने भगवान को इस से सुन्दर स्तुति संस्कृत साहित्य में अन्य मुश्किल से उपलब्ध हो ।

इस तरह ४८ श्लोकों की रचना के वाद सभी ताले टूट गए। आचार्य श्री वंधन मुक्त हो कर राजा भोज के सामने आए। आचार्य श्री के इस चमत्कार के प्रभाव से राजा भोज जैन धर्म का परम उपासक वन गया। उसे जैन साहित्य में जैन राजा माना गया है। यह सव भक्तामर स्तोत्र का निर्माण आचार्य मानतुंग की प्रभु भक्ति के प्रभाव से हुआ।

हमारे द्वारा इस स्तोत्र का पंजावी भाषा में प्रथम अनुवाद करके इसे प्रकाशित किया गया। जिस का विमोचन करने का सौभाग्य मेरे धर्म भ्राता श्री रविन्द्र जैन ने मुझे दिया। यह स्तोत्र महाप्रभावक फल देने वाला है। इस के हर श्लोक में मंत्र, यंत्र, तंत्र वने हैं। इस स्तोत्र में तीर्थंकर में समोसरण के अतिशयों, प्रतिहार्य का सुन्दर वर्णन है।

आचार्य श्री ने इस स्तोत्र को भयहरण स्तोत्र बताया है। आचार्य श्री ने इस स्तोत्र में स्वयं के बारे में कहा है :

"हे देव द्वारा पूजित सिंहासन पर विराजमान प्रभु ! मैं कितना निलर्ज हूं जो स्तुती ज्ञान को न जानते हुए भी आप की स्तुती को तैयार हुआ हूं। पर इस में मेरी कोई त्रुटि नहीं, क्योंकि पानी में चन्द्रमा की छाया देख बालक उसे क्या पकड़ने का अभ्यास नहीं करते ?"।३।।

"हे महामुनि मैं शक्तिहीन आप की भक्ति को प्रस्तुत हुआ हूं। जेसे कमजोर हिरणी अपने बालक की रक्षा सिंह से करती है, ठीक मेरी स्थिति उस हिरणी जैसी है "।५।।

यह स्तुती के हर श्लोक में छन्द, रूपक व अलंकार के दर्शन होते हैं। अनेकों आचार्यों ने इस पर टीका शास्त्र रचे हैं। उस स्तोत्र का हर श्लोक हर शब्द चमत्कारी फलदायक है। इस का मंत्र शास्त्र में अपना स्थान है। जैन धर्म में यह स्तोत्र भक्ति मार्ग की पराकाष्टा है। सब से बड़ी बात है कि इस स्तोत्र को जैन धर्म के सभी सम्प्रदाय श्रद्धा से मानते हैं। हां, इस के श्लोक संख्या को लेकर श्वेताम्बर मुनि पूजक संघ बाकी जैन समाज से कुछ मत भेद हैं। श्वेताम्बर जैन मुर्ति पूजक संघ इस की श्लोक संख्या ४५ मानता है। बाकी सभी ३ सम्प्रदाय ४८ मानते हैं।

कल्याण मंदिर स्तोत्र २ :

हमने इस स्तोत्र का पंजाबी अनुवाद किया है। यह आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर की अमर कृति है। इस की रचना भी उज्जैनी का महाकाल मन्दिर माना जाता है। जब राजा विक्रमादित्य ने आचार्य सिद्धसेन दिवाकर से शिव

मन्दिर में जाकर शिवलिंग को नमस्कार करने को कहा। इस के उत्तर में राजा ने कहा "हम अनेकांत वादी साधु हैं हमें सरागी देव को नमस्कार करना मना है। यह भगवत् आज्ञा के विपरीत है।"

राजा अपनी जिद पर अड़ा रहा। आचार्य श्री ने कहा "चलो मैं महाकाल के मन्दिर में जाकर प्रणाम करूंगा। यह शिव लिंग मेरा प्रणाम सहन न कर सकेगा। अगर कोई हानि हुई तो मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं होगी।"

आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर ने राजाज्ञा को स्वीकार करते हुए महाकाल मंदिर में पहुंचे। भगवान पार्श्वनाथ की स्तुती प्रारम्भ की। पांचवे श्लोक के उच्चारण के वाद शिवलिंग फट गया। भूमि से प्रभु पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा प्रकट हुई। यह स्तोत्र भी भक्तामर स्तोत्र की तरह छंद अलंकार से अलंकृत है। यह स्तुती भी चारों सम्प्रदायों मं सदंमान्य है। स्तोत्र अनेक मंत्र, यंत्र व तंत्र का भण्डार है। इस चमत्कारी स्तोत्र का अनुवाद भी मेरे नाम को समर्पित पत्रिका पुरूषोत्तम प्रज्ञा के अंक में प्रकाशित हुआ था। यह रचना मेरे जन्म दिन पर मेरे धर्मभ्राता की विशेष भेंट थी।

इस स्तोत्र के साथ हमने लोगस्स, नमौथ्युणं, उवसगंहर पाठ का भी पंजावी अनुवाद प्रकाशित किया। यह सब मेरे जन्म दिन पर मेरे धर्म भ्राता रविन्द्र जैन ने मुझे समर्पित किया। मैं स्वयं भगवान पार्श्वनाथ का भक्त हूं। इस स्तोत्र का पंजावी अनुवाद करके हमने अपने इष्ट को अपनी भाषा में श्रद्धांजली भेंट भक्ति की है।

यह दोनो जैन इतिहास की प्राचीन परम्परा से सवंधित हैं। इन के स्वाध्याय से पता चला है कि प्राचीन काल से जैन आचार्य को धर्म प्रचार में किस तरह के कठिन संकट सहने पड़े। स्वंय आचार्य सिद्धसेन दिवाकर पहले

क्रियाकाण्डी ब्राहमण थे। पर ज्ञान मद के कारण शास्त्रार्थ में हार गए। हार के पश्चात जैन श्रमण बन गए। फिर अपनी योग्यता के आधार पर आचार्य बने। आचार्य बनने के बाद विपूल मात्रा में संस्कृत साहित्य लिखा।

अथ प्रश्नोतर रत्न मालिका – ४, प्रश्नोतर रत्न मालिका ५ :

दक्षिण भारत में काफी लम्बे समय तक जैन धर्म राज धर्म रहा है। अनेकों राजाओं, रानीयों, सामन्तों, मंत्रीयों व समान्य प्रजाजनों ने इस जैन धर्म का पालन किया। पर शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट, मंडन मिश्र, रामानुज जैसे ब्राहमणों ने जैन धर्म का विरोध स्वयं ही नहीं किया, वलकि राजाओं से भी करवाया। आज तामिलनाडू, विहार में जैन मंदिर तो हैं पर जैन नहीं। इसी तरह राजा खारवेल के उड़ीसा राज्य में जैन धर्म लोप हो गया। पर जैन धर्म का प्राचीन रूप आज भी महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र में मिल जाता है। कर्नाटक प्रदेश में अनेकों पिछड़ी जातीयां जैन हैं। कर्नाटक वही प्रदेश है जहां आचार्य भद्रवाहु स्वामी अपने शिष्य मुनि चन्द्रगुप्त मोर्य के साथ पधारे। उन्होंने धर्म प्रचार किया। वहां दोनों ने समाधि मरण किया। उनकी समाधि श्रवणवेलगोला में है। इसी स्थान पर गंग वंश के मंत्री व सेनापति चामुण्ड राय ने भगवान बाहुबलि की विश्व प्रसिद्ध प्रतिमा का निर्माण किया। गुजरात के बाद आज भी जैन धर्म कर्नाटक में ग्रामीण स्तर पर पनप रहा है। वहीं अनेकों दिगम्बर जैन तीर्थ हैं। इसी प्रदेश के राजा ने संयम ग्रहण किया। उन्होंने शास्त्रों का भी अध्ययन किया। बहुत कम वर्षों तक तप किया। फिर उन्होंने अपने गुरू की आज्ञा से इस दो लघु ग्रंथों का संस्कृत भाषा में निर्माण किया। दोनों ग्रंथ गागर में

सागर हैं। दोनों प्रश्न उत्तर के रूप में हैं। यह प्रश्न जैन धर्म, साधु जीवन व गृहस्थ जीवन से सवंधित है।

इन प्रश्नों के उत्तर जीवन की समस्याओं का समुचित समाधान प्रस्तुत करते हैं। इन ग्रंथों को एक वार पढ़ने से ऐसा लगता है कि जीवन रूपी पुस्तक के पन्ने कोई पल्ट रहा हो। इन ग्रंथ के माध्यम से इस ग्रंथ के विद्वान मुनि की विद्वता का पता चलता है। प्रथम पुस्तक में प्रश्नों की गिनती ज्यादा है। जब कि दूसरी पुस्तक आकार में लघुकाया है। इन रचनाओं से आचार्य ने अपने अनुभव प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किये हैं। प्रश्न के साथ ही उसका उत्तर है।

ऐसी कृति कम देखने को मिलती है फिर ऐसी रचना, जिस का कर्ता कभी एक प्रदेश का राजा रहा हो, कम उपलब्ध है। राजाओं का जीवन भोग प्रधान होता है। भोग से त्याग का जीवन एक क्रान्ति का उद्घोष है। यही उद्घोष इन प्रश्नों के उत्तरों में झलकता है। यह ग्रंथ दक्षिण को उत्तर से जोड़ता है। दक्षिण भारत के आचार्य ने संस्कृत में वहुत कार्य किया है। इस का उत्कृष्ट उदाहरण यह सार गर्भित ग्रंथ है। इन दोनों पुस्तकों के ४५ पृष्ठ हैं। इसका विमोचन पंजावी विश्वविद्यालय में हुआ था।

अप्रकाशित संस्कृत साहित्य

सिन्धुर प्रकरण १ :

सिन्धूर प्रकरण ग्रथ का संस्कृत साहित्य में अपना महत्व है। यह ग्रंथ भी ऐसा है जिसे श्वेताम्वर-दिगम्वर दोनों मानते हैं। यह नीती परक ग्रंथ है। जैसे पंचतंत्र में व्यवहारिक ज्ञान है। इस प्रकार इस ग्रंथ में ज्ञान भरा पड़ा है। इस के लेखक अज्ञात हैं। पर इस ग्रंथ पर संस्कृत भाषा में दिगम्वर आचार्यों ने काफी कार्य किया है। यह ८वीं